RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-03
Issue-12
December -2018

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

मनोविज्ञान और जैनेंद्र का साहित्य

डॉ. अनिल सिंह

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, सोनुभाऊ बसवंत महाविद्यालय, शहापुर, ठाणे-421 601

हिंदी कहानी और उपन्यास को पहली बार विश्वस्तरीय होने का दर्जा प्रेमचंद की वजह से हासिल हुआ। प्रेमचंद विशुद्ध सामाजिक सरोकारों के कथाकार थे। उनके उपन्यास और कहानियाँ इस बात का सशक्त सबूत हैं। प्रेमचंद के रहते हुए ही जिन अन्य कथाकारों ने कथा के रूप को बदलने में अहम भूमिका निभाई, हिंदी कथा साहित्य को वैविध्यपूर्ण बनाया, ऐसे कथाकारों में जैनेंद्र का नाम सर्वप्रमुख है। उस समय जबकि कथा साहित्य के प्रारूप पर प्रेमचंद का सर्वव्यापी प्रभाव छाया हुआ था, ऐसे समय में जैनेंद्र ने हिंदी कथा साहित्य को नई दिशा दी और इस हेतु उनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। हिंदी कथा साहित्य का इतिहास बिना जैनेंद्र की चर्चा के पूर्ण नहीं होता।

हिंदी कथा साहित्य के इतिहास में जैनेंद्र की पहचान एक मनोवैज्ञानिक कथाकार के तौर पर मुकम्मल मानी जाती है। उनकी इस पहचान ने प्रेमचंद की कथा-परंपरा को पूर्णता देने का काम किया था। यह कोई ऐसी धारा नहीं थी जो उस समय के कथारूप को अस्वीकार कर आगे बढ़ी थी, बल्कि उस समय की कहानी परंपरा को नई अनुभूति से संपन्न करने का काम जैनेंद्र ने किया था। हम यह भली-भांति जानते हैं कि 1928-29 के आसपास जब जैनेंद्र हिंदी कहानी लेखन में सक्रिय हुए, उस समय तक पश्चिमी जगत में मनोविश्लेषण के सिद्धांत का प्रचार-प्रसार हो चुका था। यह सिद्धांत मानव-मन की परतों के भीतर जाकर संधान करने का काम करता था। साहित्य में जब यह विचारधारा सक्रिय हुई तब साहित्य को और परिपूर्णता मिली। लेखकों ने चरित्रों के मन कि तहों के भीतर प्रविष्ट होकर कहानी के भावबोध को और समृद्ध करने का काम किया। यदि गौर से देखा जाए तो सही मायनों में इस काम की शुरुआत जैनेंद्र ने ही की। और यह काम उन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों दोनों के ही माध्यम से किया।

ऐसा नहीं है कि मनोविज्ञान-सम्मत वर्णन जैनेंद्र से पूर्व की कहानियों या उपन्यासों में नहीं मिलते हैं। दरअसल चरित्र प्रधान कहानी में मनोविज्ञान स्वतः समाविष्ट हो ही जाता है। चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' तथा प्रेमचंद के तमाम कहानियाँ इसका सशक्त प्रमाण हैं। परंतु जैनेंद्र का महत्व इस बात में है कि उन्होंने जितनी गहराई और गंभीरता से मानव-मन के विविध पक्षों को अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया, उतना उनके पहले किसी ने नहीं किया था। जैनेंद्र ने मानव-मन जनित कई समस्याओं का चित्रण प्रधान रूप से अपनी कहानियों में किया। ऐसी कहानियाँ विविध वर्गों पर आधारित कहानियाँ हैं। उनकी कहानियों में स्त्री मनोविज्ञान का जितने प्रमाणिक ढंग से वर्णन किया गया है, वह अत्यंत आश्चर्य की बात है। एक पुरुष कहानीकार होते हुए भी उन्होंने स्त्रियों के मन की विभिन्न परतों को अद्भुत तरीके से प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त बाल-मनोविज्ञान पर आधारित उनकी कुछ कहानियाँ भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, जिसमें उन्होंने बाल मन की विभिन्न जिज्ञासाओं-समस्याओं आदि का चित्रण किया है। ऐसा ही विश्लेषण उपन्यासों के संदर्भ में भी कहा जा सकता है।

जैनेंद्र कुमार का जन्म सन 1905 में उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जिले के कौड़ियागंज कस्बे में हुआ था। जैनेंद्र का प्रारंभिक जीवन काफी संघर्षमय था। शैशव में ही पिता की मृत्यु हो गई और उनका पालन पोषण उनकी माता और मातुल पक्ष के रिश्तेदारों के द्वारा हो संभव हो सका। जैनेंद्र की औपचारिक शिक्षा-दीक्षा भी अत्यंत अस्त-व्यस्त रही। प्रारंभ से लेकर उच्चशिक्षा तक में व्यवधान किसी न किसी वजह से आते रहे। यही कारण रहा कि वह व्यवस्थित औपचारिक शिक्षा ठीक से प्राप्त नहीं कर सके। जहां तक कर्म क्षेत्र का प्रश्न है, वहां भी कमोबेश यही स्थिति रही। प्रारंभ में राष्ट्रीय आंदोलन के प्रभाव में वे राजनीतिक गतिविधियों में सम्मिलित हुए परंतु बाद में धीरे-धीरे वे इससे अलग हो गए और साहित्य की यात्रा प्रारंभ करने की भूमिका बनने लगी। युवावस्था में नौकरी के लिए भी तमाम जद्दोजहद की। दिल्ली और कोलकाता हर जगह, हर स्थान पर गए परंतु जीवन सही दिशा नहीं पा सका। यह जैनेंद्र के जीवन में घोर निराशा के क्षण थे, जिससे निकल पाना साहित्य सृजन के द्वारा ही संभव हो सका।

जैनेंद्र का पहला कहानी-संग्रह 'फांसी' सन 1929 में प्रकाशित हुआ। इसके बाद 'वातायन' (1930), 'एक रात' (1932), 'नीलम देश की राजकन्या' (1933), 'दो चिड़ियाँ' (1935), 'पाजेब' (1948), 'ध्रुवयात्रा' (1949), और 'जयसंधि' (1950) आदि प्रकाशित होते रहे। उनका साहित्य लेखन अनवरत रूप से चलता रहा। इसी अवधि में उनके परख (1929), सुनीता (1934), त्यागपत्र (1937), कल्याणी (1940), सुखदा (1952), विवर्त (1953), व्यतीत (1953), जयवर्धन (1956), मुक्तिबोध (1965), अनंतर (1968), अनाम स्वामी (1973), दशार्क

RRIJM 2015, All Rights Reserved

(1984) आदि उपन्यास प्रकाशित होते रहे। इसके अलावा कुछ और ग्रंथ भी प्रकाशित हुए, जिनसे जैनेंद्र के विचारों का परिचय मिलता है। जैनेंद्र के सभी कहानी संग्रह और उपन्यास इस बात का प्रमाण हैं कि उन्होंने सही ढंग से हिंदी में मनोवैज्ञानिक लेखन की शुरुआत की। उनकी कहानियों में मानव जीवन के किसी न किसी पक्ष का सुंदर मनोवैज्ञानिक चित्रण देखने को मिलता है।

अपने दौर में जैनेंद्र ने बड़े अनोखे ढंग से मानव जीवन के विभिन्न पक्षों का मनोवैज्ञानिक चित्रण अत्यंत यथार्थ ढंग से प्रस्तुत किया है। उदाहरण के रूप में उनकी कुछ कहानियों और उपन्यासों की चर्चा की जा सकती है। उनकी एक कहानी 'अपना-अपना भाग्य' मनुष्य के दोहरे चेहरे को अभिव्यक्त करने वाली कहानी है। मनुष्य एक तरफ तो परमार्थ का ढोंग रचता है और दूसरी तरफ जब वास्तव में परमार्थ का समय आता है तब वह भीतर ही भीतर अपने स्वार्थों में कहीं घुट कर रह जाता है। 'अपना अपना भाग्य' कहानी ऐसे ही यथार्थ को अभिव्यक्त करने वाली कहानी है। नैनीताल की भीषण सर्दी में एक बालक भूखा इधर-उधर भटक रहा है। उसने काफी समय से कुछ खाया भी नहीं है और उस भीषण सर्दी से अपने को बचाने के लिए उसके पास उपयुक्त वस्त्र भी नहीं हैं। नैनीताल के उस दुर्गम दृश्य में कुछ कुलीन मित्रों को यह बालक मिलता है। शाम की सैर के बीच में यह अनायास उनके सामने आकर खड़ा हो जाता है। जिज्ञासावश वे सभी उससे कुछ सवाल करते हैं। वह लड़का उनके प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहता है, "मेरे कई छोटे भाई-बहन हैं, सो भाग आया। वहां काम नहीं, रोटी नहीं। बाप भूखा रहता था और मारता था। मां भूखी रहती थी और रोती थी। सो भाग आया। एक साथी और था। उसी गांव का था - मुझसे बड़ा। दोनों साथ यहां आए। वह अब नहीं है।.... कहाँ गया ? ... मर गया।"[1] यह पहाड़ों की गरीबी की विवशता का परिणाम था। वह बालक उन कुलीन मित्रों की सहानुभूति तो पाता है परंतु मदद की बारी आने पर वही स्वार्थ आड़े आ जाता है। दस-दस के नोट होने के कारण एक मित्र उसकी मदद नहीं कर पाता। उस बालक के जीवन से कहीं ज्यादा कीमती दस का नोट बैठता है। वे उसे अगले दिन अपने होटल में बुलाते हैं पर नियति को कुछ और मंजूर था। वह लड़का होटल पर पहुंचने से पहले कहीं और पहुंच जाता है, "पर बताने वालों ने बताया कि गरीब के मुंह पर, छाती, मुट्ठियों और पैरों पर बर्फ की हल्की सी चादर चिपक गई थी। मानों दुनिया की बेहयाई ढकने के लिए प्रकृति ने शव के लिए सफेद और ठंडे कफन का प्रबंध कर दिया था।.... सब सुना और सोचा - अपना-अपना भाग्य !"[2] यह कहानी परिस्थितियों द्वारा पैदा किए गए निर्मम यथार्थ को तो प्रस्तुत करती ही है साथ ही, तथाकथित परमार्थियों के मनोविज्ञान का खुलासा भी करती है।

जैनेंद्र की कहानियां जहां जीवन के निर्मम यथार्थ को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने का प्रयत्न करती हैं वहीं कुछ कहानियों में उन्होंने जीवन-राग का बड़ा सुंदर चित्रण किया है। उनकी ऐसी ही एक कहानी 'खेल', जिसमें उन्होंने सुरबाला और मनोहर के माध्यम से बाल मनोविज्ञान का सुंदर चित्रण किया है, उल्लेखनीय है। यह पूरी कहानी दोनों बच्चों के खेल के उपक्रम में विकसित होती है, जिसमें बाल मन की तरह-तरह की चिंताएं और जिज्ञासाएं अभिव्यक्त होती चली जाती हैं और अपनी चरम संवेदना में पहुंचकर एक खेल की तरह ही समाप्त हो जाती है। बालमन का ऐसा सुंदर चित्रण अन्यत्र जल्दी नहीं मिलता। कहानी के अंत में पूरी कहानी की मानसिकता को अभिव्यक्त करते हुए कहानीकार लिखता है, "सुरबाला रानी हंसी से नाच उठीं। मनोहर उत्फुल्लता से कहकहा लगाने लगा। उस निर्जन प्रांत में वह निर्मल शिशु हास्य-रव लहरें लेता हुआ व्याप्त हो गया। सूरज महाराज बालकों जैसे लाल-लाल मुंह से गुलाबी-गुलाबी हंसी हंस रहे थे। गंगा मानो जान-बूझकर किलकारियां मार रही थी। और..... और वे लंबे ऊंचे-ऊंचे दिग्गज पेड़ दार्शनिक पंडितों की भांति, सब हास्य की सार-शून्यता पर मानो मन-ही-मन गंभीर तत्वालोचन कर, हंसी में भूले हुए मूर्खों पर थोड़ी दया बक्शना चाह रहे थे।"[3] इस तरह यह कहानी बाल मन की अवस्था को प्रकृति के बिंब से अभिव्यक्त करते हुए समाप्त हो जाती है।

जैनेंद्र की कहानियां मध्यवर्गीय जीवन तनावों को भी सफलता से अभिव्यक्त करने वाली कहानियां हैं। उनकी एक कहानी पत्नी में ऐसे तनावों का अत्यंत सुंदर चित्रण देखने को मिलता है। सुनंदा और कालिंदीचरण के बीच के रिश्तों को तो यह कहानी अभिव्यक्त करती ही है, साथ ही पति-पत्नी के बीच के स्निग्ध रिश्ते को भी अभिव्यक्त करने वाली कहानी है। शहर के एक ओर तिरस्कृत से मकान के दूसरे तल्ले में रहने वाले दोनों पति-पत्नी अपने मध्यमवर्गीय अभावों के बीच अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। जीवन के अभाव उनके बीच छोटे-छोटे झगड़े खड़े करते रहते हैं, परंतु इन्हीं झगड़ों के बीच से उनका जीवन स्निग्धता भी पाता है और गति भी। अपने बेपरवाह पति से सुनंदा को बहुत शिकायतें हैं। संभवत पति की बेपरवाही के कारण ही वह अपना बच्चा भी खो देती है। रोजमर्रा के जीवन में ऐसी बेपरवाहियां सुनंदा के जीवन को तनाव से भर देती हैं। यह कहानी ऐसी ही परिस्थितियों से विकसित हुई है। आधी बनी रसोई में कालिंदी अपने कुछ मित्रों के साथ भोजन करना चाहता है। वह यह भी नहीं देखता कि भोजन कितना और कितनी मात्रा में है। वह सुनंदा को भोजन के लिए कहता है पर सुनंदा की तनावपूर्ण मानसिकता के कारण दोनों के बीच तनाव पैदा हो जाता है। कालिंदी अपने मित्रों से बाहर होटल में भोजन के लिए कहता है और तभी सुनंदा एक बड़े से थाल में सारा भोजन लेकर उनके बीच रख जाती है। आश्चर्यचकित से मित्र सुनंदा की सदाशयता को सराहते हुए भोजन करने लगते हैं और उनको भोजन करते देख वह अपना सारा तनाव भूल कर इस बात की प्रतीक्षा में खड़ी हो जाती है कि शायद कुछ और मांगा

जाए तो वह लाकर दे दे। इस कहानी के मर्मस्थल को अभिव्यक्त करते हुए कहानीकार लिखता है, "सुनंदा ने अपने लिए कुछ भी बचा कर नहीं रखा था। उसे यह सूझा ही न था कि उसे भी खाना है। अब कालिंदी के लौटने पर उसे जैसे ही मालूम हुआ कि उसने अपने लिए कुछ भी बचाकर नहीं रखा है। वह अपने से रुष्ट हुयी। उसका मन कठोर हुआ। इसलिए नहीं कि क्यों उसने खाना नहीं बचाया। इस पर तो उसमें स्वाभिमान का भाव जागता था। मन कठोर यों हुआ कि वह इस तरह की बात सोचती ही क्यों है ? छि:। यह भी सोचने की बात है और उसमें कड़वाहट भी फैली। हठात यह उसके मन को लगता ही है कि देखो उन्होंने एक बार भी नहीं पूछा कि तुम क्या खाओगी। क्या मैं यह कह सकती थी कि मैं तो खाऊं और उनके मित्र भूखे रहें। पर पूछ लेते तो क्या था।"[4] यह कहानी अत्यंत सुंदर तरीके से एक पत्नी के स्वाभिमान को अभिव्यक्त करने वाली कहानी है, जो अपने पति से स्नेहपूर्ण आग्रह चाहती है।

अपने उपन्यासों में भी जैनेंद्र ने विभिन्न दृष्टिकोणों से अलग-अलग वर्ग-वय और परिस्थितियों के अनुसार जो मनोवैज्ञानिक चित्रण उपस्थित किया है, वह अत्यंत उल्लेखनीय है। साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित उनकी कृति 'मुक्तिबोध' उनकी ऐसी विशिष्ट कृति है जिसमें उन्होंने समाज-राजनीति आदि को केंद्र में रखते हुए इनमें पैदा हो रहे भ्रष्टाचार की गहरी मनोवैज्ञानिक पड़ताल की है। यह कृति इसलिए और भी विशिष्ट हो जाती है कि आजादी के बाद बदले परिदृश्य को वाह्य परिस्थितियों के अनुरूप देखने के बजाय जैनेंद्र ने इसमें पूर्ण आंतरिक कारणों को खोजने का प्रयास किया है, जिन्होंने समाज और राजनीति में भ्रष्टाचार को बढ़ाने में अपना अहम योगदान दिया है। उपन्यास का नायक सहाय, आजादी के बाद हो रहे विचारधारात्मक क्षरण से अत्यंत व्यथित है। एक स्थान पर वह कहता है कि, "राज, हम-तुम जिंदा थे, जब गांधी जी रहे थे। तुम खुद उनसे मिली थीं। मैं पूछता हूँ, वह मरे किसलिए ? क्या इसलिए कि हम सब भूल जाएं और इतिहास के लिए छोड़ दें कि वह फिर उन्हें ढूंढकर निकालें। राज, क्या वह मरकर हमें कुछ सौंप नहीं गए हैं।"[5] यह कथन समाज और राजनीति में हो रहे क्षरण को अभिव्यक्त करता दिखाई देता है। वहीं दूसरी तरफ जैनेंद्र ने इसमें उन परिस्थितियों का वर्णन भी किया है जो इस भ्रष्टाचार के लिए जिम्मेदार हैं। सहाय जैसे राजनीतिज्ञ जो मूल्यों पर आधारित राजनीति करते हैं, वे अपने पारिवारिक दबाव से विवश किए जाते हैं कि वे स्वयं भी भ्रष्टाचार में सम्मिलित हों। जैनेंद्र ने इसकी परिणति सहाय के पदत्याग और सन्यास में दिखायी है। जैनेंद्र जानते थे कि यह उपन्यास उन परिस्थितियों के वर्णन के लिए तो ठीक है पर इनका अंत यही नहीं है। इसीलिए वे उपन्यास के अंत में लिखते हैं, "आगे मुझे कुछ नहीं कहना है। मुक्तिबोध की कहानी यहां ही खत्म हो जाती तो अच्छा था। लेकिन जग का जंजाल खत्म होने के लिए नहीं होता है। परंपरा विस्तृत होती चलती ही जाती है कि सब अंत में मुक्ति में पर्यवसान पाए। अर्थात मुक्ति और सृष्टि परस्पर समन्वित शब्द हैं। शायद सृष्टि में से मुक्ति है चाहे तो देखें कि सृष्टि सदा बंधनों की ही सृष्टि हुआ करती है।"[6] इस तरह जहां व्यक्ति का अपना एक मनोविज्ञान होता है वहीं समेकित ढंग से पूरे समाज का भी अपना एक मनोविज्ञान होता है और इस उपन्यास में जैनेंद्र ने उस सामाजिक मनोविज्ञान को ही उभारने की चेष्टा की है।

जैनेंद्र के साहित्य का दायरा अत्यंत व्यापक है। यह दायरा भावात्मक और मात्रात्मक दोनों ही दृष्टिओं से व्यापकता लिए हुए है। उनके सभी सरोकारों को परखना एक आलेख में शायद ही संभव है क्योंकि आलेख की अपनी एक सीमा होती है। परंतु फिर भी जैनेंद्र की कुछ कहानियों और उपन्यास 'मुक्तिबोध' के माध्यम से उनकी संवेदनात्मक परख और विश्लेषण को चिन्हित करने की कोशिश की गई है। वास्तव में जैनेंद्र ने प्रेमचंद के रहते हुए ही इस धारा का विकास हिंदी साहित्य में किया था। यह धारा जैनेंद्र से पूरी तरह से अपनी पहचान पाती है और जितने व्यापक ढंग से जैनेंद्र ने इसको हिंदी साहित्य में उभारा है, बाद में अन्य कोई साहित्यकार इसे इतने विशिष्ट रूप में नहीं उभार सका है। इसी में जैनेंद्र का महत्व निहित है।

संदर्भ :

1. जैनेंद्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियां- सं लीलाधर मंडलोई; पृष्ठ 60; भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली; सं 2019
2. जैनेंद्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियां- सं लीलाधर मंडलोई; पृष्ठ 63; भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली; सं 2019
3. जैनेंद्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियां- सं लीलाधर मंडलोई; पृष्ठ 55; भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली; सं 2019
4. जैनेंद्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियां- सं लीलाधर मंडलोई; पृष्ठ 117; भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली; सं 2019
5. मुक्तिबोध - जैनेंद्र कुमार; पृष्ठ 73; भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली; सं 2017
6. मुक्तिबोध - जैनेंद्र कुमार; पृष्ठ 102; भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली; सं 2017

RRIJM 2015, All Rights Reserved